IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

'मुक्तिपर्व' उपन्यास में दलित अस्मिता का अध्ययन

सुमन
शोधार्थी
हिंदी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय
रोहतक (हरियाणा)

सारांश – दलित शब्द संस्कृत की 'दल' शब्द से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है – टूटना, बिखरना, समूह आदि। जब यह विशेषण का स्वरूप लेता है तो अर्थ होता है टूटा हुआ, नष्ट किया गया, दबाया गया। दलित अस्मिता अपने ऊपर थोपे गए परम्परा, रूढ़ियों का निषेध करती है। दलित अस्मिता' के उभार और उसके दावे के संदर्भ में कहा जा है कि दलित कोई एक जाति नहीं है, एक बनायी हुई पहचान है जो एक सच्चाई है, जिसे नकारा नहीं जा सकता। उभरती हुई दलित पहचान के बारे में हाल के अध्ययन से पता चला है कि एक ऐसी नई अस्मिता का उभार हो रहा है जो अपनी वर्तमान दयनीय स्थिति को हमेशा के लिए स्वीकार करने जा रही है। इस बात के लिए वह दृढ है। आज जो सदियों से हासिये के समुदाय के रूप में जीते आ रहे थे, दलित पहचान के रूप मे संगठित हो रहे हैं। दलित के रूप में उन्हें एक साथ आने के लिए एक नई सम्मानजनक पहचान मिली है, जे उनके दोयम दर्जे के मुनष्य होने की उस प्रवृति को नकारती है जो उस हिन्दू सूमाज द्वारा थोपी गई है। दलित वर्ग ने साहित्य लेखन के माध्यम अपनी अस्मिता व पहचान को बनाया। दलितों के अपने अधिकारों के लिए संघर्ष से ही दलित साहित्य का जन्म हुआ।

मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित उपन्यास 'मुक्ति पर्व' में स्वतंत्रतापूर्व व बाद की घटनाओं का वर्णन किया गया है। यह उपन्यास 2002 ई0 में अनुराग प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया है। इस उपन्यास में यह चित्रित किया गया है कि देश को तो आज़ादी मिल गई, परन्तु अछूतों आज़ादी कब मिलेगी? इसमें घृणा, उपेक्षा और तिरस्कार से पीड़ित अछूत समाज का वर्णन किया गया है जो स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते हैं। इस उपन्यास में बंसी एक चमार है। वह अलीवर्दी खाँ का नौकर है। वह अपने

बेटे सुनीत को नौकर नहीं बनाना चाहता। वह उसे पढ़ा–लिखाकर बड़ा आदमी बनाना चाहता है। अंत में उसकी इच्छा पूर्ण होती है। उसका बेटा सुनीत उन्हीं की बस्ती में अध्यापक का कार्यभार संभालता है।

शब्द–कुँजी – दलित, समस्या, समाज, अपमान, घृणा, जाति, तिस्कार, मुक्ति।

शोधपत्र – 'मुक्तिपर्व' उपन्यास एक संघर्षशील दलित परिवार की कहानी है जो भारतीय समाज की विषमतापूर्ण परिस्थितियों में अपने द्वंद के साथ अपने आत्मविश्वास से जीना चाहता है। 'मुक्तिपर्व' में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विषमता का शिकार दलित समाज का वर्णन किया गया है। इसमें दलितों का शोषण, उत्पीड़न, घृणा, गुलामी भरी जिंदगी से गुजरता हुआ दलित परिवार है। अपनी अस्मिता और पहचान से रूबरू होने का बेबाक स्वभाव सुनीत को अपने परिवार से मिलता है। वह 'डॉक्टर बाबा साहेब अम्बेडकर' के विचारों से प्रभावित है। वह जानता है कि शिक्षा द्वारा ही सामाजिक विषमता से बाहर निकला जा सकता है। उपन्यास की कथावस्तु स्वाधीनता आंदोलन के अंतिम पड़ाव एवं स्वाधीनता के उपरान्त के परिवेश के सूक्ष्म रूप एवं वास्तविक धरातल पर बुनी गई है। शहर व गांवों में सभी आजादी का जश्न मना रहे थे। बंसी को दोहरी खुशी मिली, उसी दिन उसके घर सुनीत का जन्म हुआ। बंसी अली वर्दी खां के घर मजदूरी करता था। आजादी का जश्न व बच्चे की खुशी के कारण बंसी काम पर देर से पहुंचा। अली वर्दी खां ने बंसी को चिलम भरने को कहा, उसी समय उसकी बेगम ने सौंफ और इलायची लाने का आदेश दिया। तभी बंसी ने थोड़ी देर में आने को कहा उसी समय नवाब ने गुस्से में कहा – "तुम गुलाम थे, गुलाम हो और गुलाम रहोगे।"[1] ये बातें सुनकर बंसी ने गुस्से में कहा कि – "जनाबे आली, हम न गुलाम थे, न गुलाम हैं और न गुलाम रहेंगे।"[2] ये सुनते ही अली खां ने बंसी के माथे पर चिलम दे मारी। बंसी ने महसूस किया कि गुलामी की दागवर्दी से खून के दाग अच्छे हैं। यह कहते हुए वह अली खां के महल से निकल आया कि अब मैं यहां मजदूरी नहीं करूंगा। उसमें आत्मविश्वास की भावना जाग उठी कि वह अपने बच्चे को पढा लिखाकर अच्छा आदमी बनाएगा। आर्य समाजी रामलाल के सहयोग से बस्ती में नूतन प्राईमरी स्कूल खुल गया। यहां पर कोई अध्यापक पढ़ाने के लिए तैयार नहीं था। क्योंकि सभी अध्यापक सवर्ण जाति के थे। लेकिन जैसे–तैसे एक अध्यापक का बंदोबस्त हो गया। पहले दिन स्कूल में बच्चों की भरमार रही, बच्चों की खुशी का ठिकाना नहीं था। वे पहली बार स्कूल गये थे। बच्चों की संख्या दो तीन दिन में घटनी शुरू हो गई। सभी बच्चों को न तो जल्दी उठने की आदत थी और वे अपने माता–पिता के कार्य में भी हाथ बटाते थे। जाति का नाम तो उनके साथ था ही साथ ही अपने पिता के व्यवसाय के साथ बांध दिया जाता था। काम के चक्कर में उनका बचपन और जवानी कब आई और गई इसका उन्हें कोई अंदाजा नहीं था। उनकी गरीबी ही उनकी शिक्षा में बाधा बनती थी। वे शिक्षा के बिना तो जीवित रह

सकते थे परंतु बिना अन्न के जीवित रहना मुश्किल होता है। शहर में मंदिर और मस्जिद थे। दलितों को उनमें जाने का अधिकार नहीं था। यही बात बंसी ने आर्य समाजी रामलाल से पूछी कि ''हम किनकी पूजा करें, न मंदिरों में उनके लिए प्रवेश है और न मस्जिदों में। क्या वे इंसान नहीं हैं।''[3] बंसी को जब भी वक्त मिलता तो वह यही सोचता है कि क्या हम इंसान नहीं हैं? हम ऐसा बदतर जीवन क्यों जी रहे हैं। बंसी ने रामलाल को हिन्दू धर्म छोड़कर आर्य समाजी क्यों बने। ये सभी सवाल उसके मन में दौडते रहते थे।

सुनीत भी जैसे–तैसे बड़ा हो रहा था उसके दिमाक में भी सवालों की भरमार थी। वह कभी अपने मां से सवाल करता तो कभी पिता सें बंसी पर बौद्ध–दर्शन व बाबा साहेब के विचारों का प्रभाव था। इन्हीं के आधार पर वह सुनीत के प्रश्नों के उत्तर देता था। सुनीत ने जब स्कूल में जाना शुरू किया तो उसने किताब में एक चित्र देखा, जिसमें एक ब्राह्मण प्याऊ पर लौटे से पानी पिला रहा है। जबकि दलितों को चमड़े की नलकी से पानी पिलाया जाता था। सुनीत के मन में विद्रोह व जिज्ञासा के स्वर जागते हैं कि पाठयक्रम में कुछ और वास्तव में बिल्कुल इसके विपरीत। जब सुनीत, मास्टर चौबे बस्ती के लोग प्याऊ पर जाते हैं तो सुनीत पंडित को चमड़े की नलकी से नहीं बल्कि सागर से पानी पिलाने की बात करते हैं। सुनीत ने अध्यापक से भी यही कहा कि आप तो हर दिन हमें यही पढ़ाते हैं कि हम सब समान हैं। अध्यापक ने भी सुनीत को यही कहा कि जो बात हमें गलत लगे तो उसका विरोध करना चाहिए। अध्यापक ने सुनीत से कहा कि अगर मैं किसी परंपरा को तोड़ने में तुम्हारे साथ हुआ तो यह मेरे लिए गर्व की बात होगी। सुनीत ने नलकी से पानी पीने से इंकार कर दिया। उसने पंडित के हाथ से नलकी खींचकर दूसरी तरफ फेंक दी। सुनीत ने कहा सागर से पानी पिलाइये। पंडित ने कहा कि तुम तो यह कहते हुए वह बीच में ही रूक गया। सुनीत ने स्वयं कहा–"हां–हां पंडित जी, हम ढेठ चमार हैं, पर अब देश आजाद है। इतना समझ लो कि तुम्हे ऐसा करने पर जेल जाना भी पड़ सकता है।"[4] तभी मास्टर ने भी बच्चों का समर्थन किया। पुलिस और भीड़ को देखकर पंडित का गुस्सा छुमंतर हो गया। पंडित ने सभी के सामने कान पकड़कर क्षमा मांगी, सभी को बर्तन से पानी पिलाया।

सुनीत की पानी वाली घटना सुनकर छमिया, सुंदरी व बंसी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। सुनीत को दलित होने के कारण अपमान, घृणा, उपेक्षा को सहना पड़ता था। लेकिन वह इतना सब होने पर भी हार नहीं मानता बल्कि उनके प्रति विद्रोह प्रकट करता है। सुनीत के घर बिजली न होने के कारण वह अध्यापन कार्य को दिन के उजाले में ही पूरा करता था। उसने पांचवी कक्षा उत्तीर्ण की। बस्ती के पांच बच्चों ने पांचवी की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। बाला बस्ती की इकलौती बेटी थी जिसने पांचवी कक्षा उत्तीर्ण की। इससे पहले लड़कियों को शिक्षा नहीं दी जाती थी। सुनीत को सबसे अधिक अंक मिले थे। इसलिए बंसी को ज्यादा खुशी हुई। सुनीत व अन्य बच्चों को चेयरमैन ने एक रूपया

देकर बधाई दी। रूपया पाकर बच्चों की खुशी दोगुनी हो गई। गर्मी की छुटटियों में सुनीत ने अपनी बस्ती के बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। बच्चों के मां–बाप व बंसी अपने बेटे के इस कार्य से अत्यंत खुश थे। उसने कहा – ''बेटा विद्या तो ज्योत के समान है। एक ज्योति से हजारों ज्योत जल सकती हैं।''[5]

गर्मी की छुटटियों के बाद सुनीत अपने पिता के साथ बनियां पाड़ा बस्ती के जुनियर हाई स्कूल में दाखिला लेने गया। अध्यापक ने सुनीत से अपने विद्यालय का नाम पूछा तो उसने निकेतन प्राइमरी स्कूल बताया। अध्यापक ने उसकी और घृणा की दृष्टि से देखते हुए बोला–''समझ गया बच्चू समझ गया, चमारों के स्कूल से आए हो यही ना'' ।''[6] अध्यापक के मुख से ऐसी बातें सुनकर सुनीत के अंतर्मन को गहरा आघात पहुंचा। वह सोचने लगा कि सभी हमारे साथ ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं क्या हम मनुष्य नहीं हैं। ये लोग हमें पशुओं से भी बदतर समझते हैं। तभी अध्यापक ने बंसी को सलाह दी कि इसे कहीं काम पर लगा दो। लेकिन बंसी ने इंकार करते हुए कहा कि मैं इसे पढा–लिखाकर अच्छा आदमी बनाना चाहता हूं। अध्यापक सुनीत की पांचवी की अंक तालिका में नम्बर देखकर हैरान हो गया क्योंकि उसे 500 में से 450 अंक मिले थे। इतने नम्बर देखकर अध्यापक को दुख और आश्चर्य हुआ। आखिरकार इतना सब होते हुए सुनीत का दाखिला हो गया और उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा।

जब छठी कक्षा में सुनीत पहली बार स्कूल गया तो उसने देखा कि यह स्कूल पहले से बड़ा, पुस्तकालय और रंग बिरंगे फूल देखकर उसे बहुत अच्छा लगा, पर यह खुशी कुछ देर की थी। बच्चों ने उसके स्कूल का नाम पूछा तभी अध्यापक ने उसे चमारों वाले स्कूल का विद्यार्थी बताया। सब बच्चों में वह उपहास का पात्र बन गया। सभी बच्चे उसकी ओर देखकर हंस रहे थे। तभी उसे अपने पिता की बात याद आ गई–''बेटे कितनी भी परेशानी आए, कभी आंसू मत बहाना। यह दुनिया किसी गरीब के आंसू देखकर रोटी नहीं बल्कि हंसती है।''[7] पूरी कक्षा में बच्चे और अध्यापक हंस रहे थे। यह देखकर उसे इतना दुख हुआ जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। तभी उसकी सहपाठी सुमित्रा ने सुनीत को समझाया कि जाति से कोई छोटा बड़ा नहीं होता, बल्कि अपने कर्मों से होता है।

सुनीत ने घर आते ही अपने पिता को पूरे घटनाक्रम के बारे में बताया। यह सब सुनकर बंसी को बहुत बुरा लगा–''लोगों को दुख होता है हमारी आजादी से। पशु पक्षियों की आजादी उन्हें भाती है। चिड़ियों को वे पिंजरे से मुक्त कर देते हैं पर हमारी मुक्ति के सवाल पर चुप्पी साध लेते हैं हम स्वयं कुछ कहें तो आंखे दिखाते हैं।''[8] बंसी को सुनीत के साथ दाखिला दिलाने के लिए जब स्कूल गया था तो अध्यापक ने उसके बेटे को आगे पढ़ाने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया, बल्कि उनकी गरीबी का हवाला देकर उसे कुछ काम धंधा लगाने को कहा जैसे हम कोई भिखारी है। इन सभी घटनाओं का बंसी के मन पर गहरा प्रभाव पडा। वह सोचता है कि – ''वह स्वयं से ही सवाल करता पर उन्हें क्या

अधिकार है हमारे जख्मों को कुरेदने का।"[9] अध्यापके ने सुनीत और बंसी के शरीर पर नहीं, बल्कि उनके अंतर्मन को झकझोर कर रख दिया। वह सोचने लगा कि हम कब तक सहते रहेंगें। उनकी जाति के कारण हमेशा अपमान, घृणा, तिरस्कार को सहन करना पड़ता है। वह सोचने लगता है कि हमें शिक्षित बनकर ही अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना पड़ेगा, नही ंतो यह हमें पीढी दर पीढी भोगना पड़ेगा।

उनके घर में बिजली नहीं थी। सुनीत मिटटी के दिये के प्रकाश में पढ़ता था। वह अपना कार्य दिन में ही पूरा कर लेता था। कभी–कभी वह घर बाहर सड़क किनारे बैठकर लैम्प की रोशनी में पढ़ता था। बंसी को यह सब देखकर दुख व खुशी दोनों होती थी क्योंकि उसी ने सुनीत को बताया था कि बाबा साहेब खुब पढ़ते लिखते थे। उनके घर बिजली नहीं थी, पर वे बाहर लैम्प पोस्ट के उजाले में पढ़ते थे।"[10] बंसी बेटे के मुंह से ये बातें सुनकर प्रसन्न हो गया। सुनीत ने पिता से कहा कि मैं इसलिए इतनी मेहनत कर रहा हूं कि हमारी जाति का सिर ऊंचा हो और हमें मान–सम्मान प्राप्त हो जिसके हम अधिकारी हैं। सुनीत ने छटी कक्षा में छमाही परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त हुई। वह जातीय आधार पर नहीं बल्कि योग्यता के आधार पर वजीफा प्राप्त करना चाहता है। उसने अपने अध्यापक पांडे को हस्ताक्षर के लिए कहा तो उसने कहा कि तुम तो अनुसूचित जाति का फार्म क्यों नहीं भरते जब सरकार ने तुम्हे इतनी छूट दी है। सुनीत ने कहा कि मैं योग्यता के आधार पर छात्रवृत्ति का आवेदन करना चाहता हूं। मैं जाति के आधार पर छात्रवृत्ति नहीं लेना चाहता जिसके कारण हमें अपमान सहना पड़ता है। क्योंकि मैं योग्यता के आधार पर छात्रवृत्ति प्राप्त करके सम्मानपूर्वक जीवनयापन करना चाहता हूं।

सुनीत पर अब दोहरी जिम्मेदारी थी। अब वह अपनी पढ़ाई समाप्त करके बस्ती के बच्चों को पढ़ाता था। उसका पुरा दिना पढ़ाई में बीतता था। उसके दिन–रात मेहनत करके छठी कक्षा से सातवीं में ज्यादा अंक प्राप्त किये। लेकिन अध्यापक नही चाहते थे कि भंगी, नाई, तेली, चमार पढ़लिखकर आगे बढें। कक्षा में प्रथम स्थान नगरपालिका के अध्यक्ष अजय शर्मा का था। क्योंकि वह ब्राह्मण जाति से था। सुनीत को लगा कि नए स्कूल में वातावरण व परिस्थिति में सुधार मिलेगा, परंतु यह उसका भ्रम था। नए स्कूल के प्रांगण में शिव मंदिर में सुनीत व हबीबुल्ला दोनों को मंदिर में देखकर अध्यापक शिवानन्द शर्मा आगबबुला हो गए। उसने कहा–एक मांस काटने वाला और दूसरा मांस खींचने वाला। हे भगवान, हे भगवान, सत्यानाश हो तुम्हारा। हमारा तो मंदिर ही भ्रष्ट कर दिया।"[11] अध्यापक की बातें सुनकर वह सोचने लगा कि मंदिर तो दलित व पिछड़ी जाति के लोगों द्वारा ही बनाया जाता है उन्हें तो किसी ब्राह्मण को मंदिर बनाते नहीं देखा। हिंदी की कक्षा में जब अध्यापक यह कहते हैं कि बच्चे तो भगवान का रूप होते हैं जिसे सुनकर सुनीत के मन में बेचैनी हो गई–

"कौन से बच्चे भगवान का रूप होते हैं?

"कौन–सा भगवान है वह?

कहां रहता है वह?"[12]

कल इसी अध्यापक ने हमें बेइज्जत किया और आज यही बच्चों को भगवान का रूप बता रहा है। यह सुनकर सुनीत के मन में अध्यापक के नकली मुखौटे को सभी के सामने खोल दें। लेकिन वह सोचने लगा कि पूरी दुनिया ही भ्रष्ट है वह किस–किस के मुखौटे उतारेगा। एक दिन सुमित्रा ने बताया कि सभी अध्यापक मिलकर यह कहा कि अगर ससुरे चमार के बच्चे ने हमारे स्कूल को टाप किया तो नाक नहीं कट जाएगी हमारी।"[13] उसके मन में अनेक सवाल उठ रहे थे कि क्या ऐसे ही अध्यापक देश के निर्माता होते हैं। ऐसे अध्यापकों के कारण ही देश का भविष्य अंधकार में है। सुनीत के अपमान, घृणा, तिरस्कार आदि को सहन किया परंतु हिम्मत नहीं हारी। आखिरकारवह अपनी बस्ती के निकेतन प्राइमरी स्कूल में अध्यापक के तौर पर कार्यभार संभाल लिया। उस दिन उसके मां–बाप व बस्ती के लोग गौरवान्वित महसूस कर रहे थे कि हमारे बच्चे भी पढ़लिखकर आगे बढ सकते हैं।

निष्कर्ष – 'मुक्तिपर्व' मोहनदास नैमिशराय का सामाजिक व समस्या प्रधान उपन्यास है। यह स्वतंत्रता आंदोलन को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। उसके शीर्षक से ही स्पष्ट होता है कि मुक्ति के सपने देखने वाले दलितों के संघर्षशील जीवन का पर्व। सन् 1947 में मिली आजादी केवल राजनीतिक आजादी थी। सामाजिक आजादी अभी बाकी है। यह सामाजिक आजादी दलितों व स्त्रियों की मुक्ति के बिना संभव नहीं है। प्रस्तुत उपन्यास में आजादी पूर्व व बाद के दलितों की मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति उनके व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन मे आए बदलावों का वर्णन किया है। दलित और स्त्री महात्मा ज्योतिबा फूले के चितन के प्रमुख विषय थे। महात्मा फूले के क्रांतिकारी विचारों से प्रभावित होकर जनादर्न वाधमारे ने लिखा है कि – ''महात्मा फूले जी को वास्तव में किसी भी प्रकार का भेदभाव मान्य नहीं था। जातिवाद तो कतई नहीं, मनुष्य–मनुष्य में बंधुभाव का अगर निर्माण हुआ तो न रहेगा धर्मभेद और न रहेगा जातिभेद।''[14] वास्तव में उक्त उपन्यास इसी विचारधारा का समर्थन करता है क्योंकि ''अस्मिता दया नहीं चाहती है। अस्मिता हक चाहती है।''[15]

संदर्भ

1 मोहनदास नैमिशराय, मुक्तिपर्व, 2004, पृ0 सं0 28

2 वही, पृ0 सं0 28

3 वही, पृ0 सं0 50

4 वही, पृ0 सं0 54

5 वही, पृ0 सं0 56

6 वही, पृ0 सं0 57

7 वही, पृ0 सं0 61

8 वही, पृ0 सं0 64

9 वही, पृ0 सं0 64

10 वही, पृ0 सं0 71

11 वही, पृ0 सं0 111

12 वही, पृ0 सं0 112

13 वही, पृ0 सं0 113

14 डॉ0 सूर्यनारायण रणसुभे, दलित साहित्यः स्वरूप और संवेदना, पृ0 सं0 24

15 समीक्षा ठाकुर, संपादक, बात–बात में बात, 2006, पृ0 सं0 292